

कहानी

अमृत दर्शन

“चक्रवर्ती होकर भी विरक्त। असंभव बात है। अनेक नवयौवना महारानियों और विपुल सुखसामग्रीका भोक्ता उदासीन, कल्पना की बात है। वैभव और आत्मदर्शन तीन और छहकी तरह विरोधी है।”

“नहीं, बन्धु, असंभव कुछ नहीं है और न कल्पना ही है। वैराग्य और उदासीनता अन्तरकी परिणति है, विभूति और वैभव बाह्य पदार्थ हैं। मात्र दृष्टि फेरनेसे नकशा ही बदल जाता है।”

सोमदत्त और यज्ञदत्त दो द्विजकुमार आपसमें बतया रहे थे। दोनोंने निश्चय किया कि यदि सच-मुच भरतको आत्मदृष्टि प्राप्त है तो यह विद्या उनसे सीखनी चाहिये। पुराने जमानेमें अध्यात्मविद्या क्षत्रियों के पास ही रही है, यह सुना जाता है।

दोनों महाराज भरतके दरबारमें पहुँचे।

सोमदत्त—महाराज, सुना है कि आपको आत्मदर्शन हो गया है। छहखंडके अखण्ड साम्राज्यको सम्हालते हुए भी आत्मदर्शन ? कुछ समझमें नहीं आता।

यों भाटों और चारणोंके द्वारा अन्य विभूतियोंकी तरह एक यह भी शोभावर्णन हो तो हमें कुछ कहना नहीं है। हम अपना चौबीसों घंटा अग्निहोत्र आदि क्रियाओंमें लगाते हैं और सतत धर्मकी आराधना करते हैं पर हमें अभी तक आत्माके दर्शन नहीं हो सके। आप हमें वह उपाय बतावें जिससे आपको आत्मदृष्टि प्राप्त हुई है।

महाराज भरत मुस्कराये। उनने कहा—विप्रकुमार, मुझे इस समय कुछ आवश्यक राजकाज है। आप लोग तबतक हमारे राजकोश और वैभवका निरीक्षण करके वापिस आइए फिर शान्तिसे आत्मचर्चा करेंगे। हम आपको एक-एक अमृतपात्र देते हैं इसे हथेलीपर रखकर ही आप कटक—निरीक्षणके लिए जायेंगे। ध्यान रहे, इसकी एक बूंद भी न छलक पावे, अन्यथा राजदंड भोगना होगा।

दोनों विप्रकुमार दरवानके साथ हथेलीपर अमृतपात्र रखे हुए कटकमें गये।

दरवानने एक-एक करके राजकोश, अश्वशाला, गजशाला, सेनानिवास, रानियोंके अन्तःपुर आदि दिखाये।

दो घंटेमें समस्त कटक घूमकर विप्रकुमार वापिस आये।

महाराज भरत विचारमग्न थे। आते ही विप्रकुमारोंसे पूछा—क्यों भाई, कटक देख आये ? अन्तःपुर गए थे ? कैसा लगा ?

द्विजकुमार सिटपिटाये और बोले—महाराज, शरीरसे घूमनेकी क्रिया तो अवश्य हुई पर सिवाय इस अमृतपात्रके हमने कुछ नहीं देखा। हमें इसके छलकनेकी चिन्ता प्रतिक्षण लगी थी। दरवानके शब्द कानों तक जाते थे, पाकशालामें पकवानोंकी सुगन्धित नाक तक आई थी, प्यास लगनेपर सुन्दर पानक भी पिया था, अन्तःपुरकी सुकोमल शय्याओंपर भी बैठे थे और इन आँखोंने सब कुछ देखा पर इन्द्रियाँ तो सुनने, सूँघने, चखने और छूनेवाली नहीं हैं, हमारा मन और आत्मा तो इस अमृतकी ओर था। यह चिन्ता थी कि कहीं इसकी एक भी बूंद न छलक जाय।

सो महाराज, हमने सिर्फ इस अमृतपात्रको ही देखा है, कटक आदिको देखते हुए भी नहीं देखा ।

“हैं, ‘देखते हुए भी नहीं देखा’ झूठ । यह कैसे हो सकता है ?” भरतने विनोदमें कहा ।

“महाराज, हमारी दृष्टि इस अमृतपर थी । इस अमृतकी एक बूंद हमारी आत्माके बराबर थी । इसकी एक बूंदसे हमारी आत्मा तुल रही थी ।” द्विजकुमारने कहा ।

भरतने फिर पूछा—

“यह अमृत कैसा लगा ?”

द्विजकुमार बोला—

“महाराज, यह अमृत नहीं था, यह तो हमारी आत्मा थी । इसके द्वारा हमें अपनी आत्माका दर्शन हो रहा था । उसका मोल मालूम हो रहा था और उसकी तौल भी । कानोंमें सुनाई देता था कि बूंद न छलके, सावधान बूंद न छलके । बूंद-बूंद-बूंद । एक ही शब्द, एक ही अर्थ और एक ही भाव चारों ओर व्याप्त था । दो घंटेका प्रत्येक क्षण बूंद दर्शन, बूंद चिन्तन, बूंद मनन और अन्ततः बूंदमय हो रहा था । और सामने दूसरा दृश्य था—फाँसीका—कदाचित् बूंद छलक गई तो रेशमकी डोरी गलेमें पड़ेगी । वस, इसी भयसे अपनी सारी शक्तसे अमृतपात्रको थामे रहे और आपकी इस अमृत-निधिको आप तक ले आये हैं ?

भरतने गम्भीरतापूर्वक कहा—द्विजकुमार, जिस प्रकार तुम्हें प्राणदण्डके भयसे इस अमृतपात्रका ही एकमात्र ध्यान रहा और तुम कटकको देखकर भी नहीं देख सके उसी तरह हमें स्वभावतः अपने रुचिसे ही अपनी आत्मारूपी अमृतकुम्भसे गुणरूपी रसके बूंदोंके छलकनेका सदा ध्यान रहता है । मेरा एकमात्र प्रयत्न आत्म-गुणोंके संरक्षणका है । मुझे यह पता रहता है कि आत्माने इस समय पाप या अन्याय किया । मुझसे अनेक प्रकारके हिंसा, परिग्रह, अनाचार सम्बन्धी भी कार्य परवश हो जाते हैं पर वे मेरे अनजानमें नहीं । उन्हें मैं हेय जानता हूँ और उनपर परदा डालकर या प्रवृत्तिका आवरण देकर आत्माको धोखेमें नहीं डालता । परको पर और स्वको स्व मानता हूँ । जितना और जबतक कर्त्तव्यका भार है तबतक उसको निभाता हूँ । मैं सदा जागरूक हूँ । मुझे अपने अच्छे-बुरेका सम्यक्-दर्शन है ।

द्विजकुमार—महाराज, आपको आत्मदर्शन कैसे हुआ ?

भरत—कुमार, तुमने सुना होगा और देख भी रहे हो कि मेरा रूप कामके समान अप्रतिम है । मुझे भी अपनी देहके बनाव-शृंगारमें रस था । मेरी आभूषण और वस्त्रोंकी नवनवप्रियता रूपकी चकाचौंधया देती थी । एक दिन मैं वस्त्राभूषणोंसे सुमज्जित होकर अपने रूपके अहंकारमें मदमाता हो दर्पणमें अपना सौन्दर्य देखकर फूला नहीं समा रहा था कि अचानक मेरे दाहिने हाथकी अँगुलीसे मणिमय अँगूठी गिर पड़ी । उसके निकलते ही वह अँगूठी श्रीहीन हो गई । मैंने क्रमशः शेष नौ अँगूठियोंको भी निकाल डाला और देखा तो वे सब शोभाहीन मालूम होने लगीं । मैंने सोचा—इस उधार ली हुई शोभासे क्या लाभ ? जिस दिन ये अँगूठियाँ न रहें उस दिन मेरी सारी शोभा समाप्त ? इसका क्या अहंकार ? हमें अपनी आत्माकी शोभा बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये, उसीका शृंगार करना चाहिये जिसे न चोर चुरा सकता है और न जिसके गिरनेका ही डर है । उसी क्षणमें मेरा मन अन्तर्मुख हो गया । सच पूछा जाय जाँ यह जगत् दृष्टि-सृष्टि है । जिसकी जैसी दृष्टि है उसे वह वैसा ही मालूम होता है और यह श्रेष्ठचित्ती अपनी उधेड़ बुनमें ही इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको निकाल देता है । सीधा सा मार्ग है स्व को स्व और पर को पर समझो । और इस स्वतत्त्वके प्रति निष्ठा ही अनन्त मुक्तिमें परिणत हो जाती है ।

द्विजकुमार—राजर्षि, हमारा भ्रम दूर हुआ । आपने तो जैसे ओंघेको सीधा कर दिया हो । आज हमें मालूम हुआ कि यज्ञ, यागादि क्रियाकांडोंका लक्ष्य भोग है, मुक्ति नहीं । ये भौतिक उद्देश्यसे किये जाने-वाले हैं आत्म-दर्शनके लिए नहीं । ‘प्लवा ह्येतेऽदृढाः’ ये यज्ञादि संसारसमुद्रसे तारनेके लिए समर्थ नहीं हैं । एकमात्र सद्-दृष्टि और आत्म-दर्शन ही तारक है, साधन है और धर्म है ।

